LEARN GEETA
तस्मात् योगी भवार्जुन

॥ श्रीहरिः ॥
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 9: राजविद्याराजगुह्ययोग

1/3 (श्लोक 1-9), रविवार, 11 मई 2025

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/pISbdL7AX10

मोक्ष प्राप्ति के गूढ़ रहस्य

श्रीहरिनाम, मधुराष्टक, राष्ट्र वन्दना गीत, श्रीहनुमान चालीसा पाठ एवम् दीप प्रज्वलन के साथ नौवें अध्याय के विवेचन का शुभारम्भ हुआ।

श्रीभगवान् की अतिशय कृपा से हम सबका परम सौभाग्य जागृत हुआ है जिसके कारण हम जीवन के परमोच्च लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु तैयार हुये हैं। यह मार्ग हमारे जीवन को तो प्रकाशित करता ही है, इस जीवन के बाद भी यह पुण्य कर्म हमारे साथ चलने वाला है। हम सब श्रीमद्भगवद्गीता के श्लोक पढ़ने लगे, कण्ठस्थ करने लगे, उसके सूत्रों का अभ्यास करने के लिये अर्थ को समझने लगे। निरन्तर विवेचन में हमारी उपस्थिति इस बात का प्रमाण है।

यह हमारे इस जन्म के पुण्य का प्रभाव है या किसी पूर्वजन्म के सुकृत हैं अथवा हमारे पूर्वजों के पुण्य हैं अथवा किसी जन्म में किसी सन्त-महात्मा की दिव्य दृष्टि हम पर पड़ गई जिसके कारण हमारा भाग्योदय हो गया कि हम श्रीमद्भगवद्गीता पढ़ने के लिए चुन लिए गए। यह सत्य है कि हमने गीता जी को नहीं अपितु गीता जी ने हमें चुना है, हमें यह विश्वास अपने मन में रखना है क्योंकि जितना गहरा यह विश्वास होता जाएगा उतना ही उस विश्वास के बल से हमारी साधना की प्रवृत्ति में वृद्धि होती जाएगी।

जो भी बातें विवेचन सत्र में बताई जाती हैं उन्हें जीवन में उतारने से ही साधना में वृद्धि होगी। आज के सत्र में अनेक बातें अच्छी लगने के बाद भी कोई एक बात ऐसी होनी चाहिए जो हम पूर्ण रूप से ग्रहण कर (take away) सकें और अविलम्ब अपने जीवन में उतार सकें। आज जब प्रश्नोत्तर सत्र आरम्भ हो तो उसी समय आप सभी एक-एक बात जो आप ग्रहण कर सकते हों वह लिखकर बतायें। एक सप्ताह तक इसका प्रयोग करें और अगले अगले सप्ताह के सत्र में इसकी चर्चा करें।

"गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें"- इस सूत्र वाक्य का अर्थ वास्तविकता में लाने हेतु हमें प्रामाणिकता से इसका पालन करना होगा।

आज का अध्याय पूर्णरूप से ज्ञानयोग का अध्याय है। सातवें अध्याय से श्रीभगवान् ने ज्ञानयोग का प्रारम्भ किया है। इसके पहले के अध्याय कर्मयोग पर आधारित हैं। छठवाँ अध्याय ध्यानयोग का है और सातवें से पन्द्रहवें अध्याय तक कुछ ज्ञानयोग तथा कुछ भक्तियोग के हैं।

सातवें अध्याय से श्रीभगवान् ने ज्ञानयोग का प्रारम्भ किया किन्तु जैसे ही सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ उन्होंने कुछ शब्दावली का प्रयोग किया है- अधिभूत, अधिभाव, अधिदैव तथा अध्यात्म इत्यादि।

यह सुनकर अर्जुन ने आठवें अध्याय के आरम्भ में ही श्रीभगवान् से इन शब्दों के अर्थ पूछ लिये। उत्तर में उन्होंने आठवाँ अध्याय निरूपित किया। तब अर्जुन को स्मरण होना चाहिये था कि वे तो किसी अन्य विषय पर चर्चा कर रहे थे, तब अर्जुन छूटे हुये विषय को पूर्ण करने का आग्रह श्रीकृष्ण से कर सकते थे किन्तु अर्जुन ने ऐसा नहीं किया क्योंकि ईश्वर जो भी बता रहे थे उसे जानने की उत्कण्ठा और रुचि उनमे थी।

आठवें अध्याय में अर्जुन के प्रश्नों के उत्तर देने के पश्चात् नौंवे अध्याय में श्रीभगवान् ने स्वयं पहले के दो श्लोकों के अर्थ स्पष्ट करते हुए **रजिविद्याराजगुह्ययोग** के विषय में बताया। श्रीभगवान् को यह आभास था कि इस विषय की गहराई को अर्जुन नहीं समझ पा रहे हैं इसलिये उन्होंने स्वयं ही इस विषय पर चर्चा प्रारम्भ की।

तीसरे श्लोक में श्रीभगवान् ने बताया है कि अश्रद्धावान व्यक्ति का नाश कैसे होता है।

9.1

श्रीभगवानुवाच
इदं(न्) तु ते गुह्यतमं(म्), प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं(वँ) विज्ञानसहितं(यँ), यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥9.1॥

श्रीभगवान् बोले -- यह अत्यन्त गोपनीय विज्ञान सहित ज्ञान दोष दृष्टि रहित तेरे लिये तो (मैं फिर) अच्छी तरह से कहूँगा, जिसको जानकर (तू) अशुभ से अर्थात् जन्म-मरण रूप संसार से मुक्त हो जायगा।

विवेचन- सातवें अध्याय को जोड़ते हुये श्रीभगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन! मैं तुम्हें विज्ञान के साथ ही ज्ञान दूँगा।

गत तिरपन सौ वर्षों में महापुरुषों ने इन दोनों शब्दों का गहन विश्लेषण किया है किन्तु हमारे लिये जो उपयोगी है उसके अनुसार आदि शङ्कराचार्य भगवान ने ज्ञान और विज्ञान पर बहुत विस्तारित चर्चा की है।

वे कहते हैं कि ज्ञान का अर्थ है परोक्ष ज्ञान अर्थात् पुस्तक द्वारा, गुरु द्वारा अथवा किसी भी माध्यम के द्वारा प्राप्त ज्ञान। बाह्य स्रोतों से प्राप्त ज्ञान।
विज्ञान का अर्थ है अपरोक्ष ज्ञान। जो ज्ञान तुम्हें तुम्हारे अनुभव से मिलता है।

उदाहरणार्थ- सबको ज्ञात है कि दही, दूध से बनता है किन्तु केवल ज्ञात होने से क्या प्राप्त होगा। उस सम्पूर्ण प्रक्रिया के बिना यह जानना कि 'दूध से दही बनता है'- यह ज्ञान व्यर्थ है।

एक बार एक पति-पत्नी में विवाद हो गया। पत्नी दही जमाने के लिए जाने लगी तो पति ने उस पर व्यंग्य करते हुए उससे कहा कि यह भी कोई कार्य है! तो पत्नी ने पति से कहा कि ठीक है, 'तो फिर आज आप ही दही जमा दीजिए।'

पति के अहङ्कार को ठेस लगी इसलिए वह भी दही जमाने के लिए तैयार हो गया। उसे लगा वह बड़ा आसान कार्य है। वह रसोई में गया। वहाँ भिन्न प्रकार के पात्रों में दूध रखा था। पत्नी से पूछने पर उसने बड़ी मुश्किल से वह दूध का पात्र बताया जिसके दूध का दही जमाना था। जामन के बारे में पूछने पर पत्नी ने वह भी बताया। अब पतिदेव ऐसे ही दूध में जामन डालने लगे तब पत्नी ने फिर टोका कि ठण्डे दूध से दही नहीं जमेगा, दूध को गर्म करना पड़ेगा।

पति को आश्चर्य हुआ। पत्नी ने फिर पूछा कि वह यह कार्य अच्छे से कर पा रहा है अथवा नहीं? तब विश्वास से भरे हुए पति ने उसे आश्वासन दिया कि आज तो वह ही दही जमाएगा। पत्नी मुस्कुरा रही थी। धीरे-धीरे दूध गरम हो गया। अब फिर पति जामन

मिलाने लगा तो पत्नी ने पुनः उसे मना किया कि अब दूध बहुत गर्म हो गया है अतः कुनकुना होने तक ठण्डा करें। जब अँगुली को सहन होने तक गर्म रह जाए तभी उस दूध में जामन डालना। जब ऐसा हुआ तब पति ने जामन मिला दिया। उसे लगा बस अब दही जम गया। तब पत्नी ने उसे बताया कि दही को जमने में मौसम के अनुसार समय लगता है। गर्मी के दिनों में शीघ्रता से और ठण्ड के दिनों में विलम्ब से दही जमता है। उस दिन पतिदेव को समझ में आया कि दही जमाना भी सरल कार्य नहीं है। कई प्रकार की तकनीक इस एकमात्र प्रक्रिया के पीछे कार्य करती है। दूध का तापमान, मौसम, जामन की मात्रा सबकुछ तकनीक है।

'दूध से दही जमाते हैं' - यह ज्ञान है किन्तु किस प्रकार जमाना है, इसका अनुभव करना विज्ञान है। परोक्ष रूप से जानने पर वह अनुभव में नहीं आता है। जानना ज्ञान का रूप है किन्तु अनुभव करना विज्ञान का।

यहाँ श्रीभगवान् बताते हैं - 'ज्ञानंविज्ञानसहितम्' मैं तुम्हें जो ज्ञान दे रहा हूँ वह ज्ञान और विज्ञान के साथ है, यह सत्यापित है। यहाँ श्रीभगवान् अर्जुन को अनूसूय कह रहे हैं। अर्जुन के लिये गीताजी में दो सम्बोधन श्रीभगवान् पुनः-पुनः प्रयोग में लाये हैं। जो साधारणतया कोई किसी को नहीं कहता है। अनुसूय अर्थात् जो किसी में दोष नहीं देखता है।

एक बार एक शिष्य ने गुरुजी से कहा कि आपको पाकर मैं धन्य हो गया। इस पर गुरुजी बोले यह तो सत्य है किन्तु मेरे अनेक शिष्यों में मुझे एक भी शिष्य नहीं मिला। सद्गुरु तो मिल जाते हैं किन्तु ऐसा सद्शिष्य नहीं मिलता है। हमें लगता है कि गुरु कहाँ मिलेंगे? किन्तु सद्गुरु मिल ही जाते हैं, जैसे हमारे परम पूज्य गुरुजी। अगर हम परमपूज्य स्वामी जी से पूछें कि उन्हें सद्शिष्य मिला क्या? तो वे चिन्ता में पड़ जायेंगे।

अर्जुन सद्शिष्य हैं तभी वे गीता का ज्ञान सुनने योग्य हुये। श्रीकृष्ण जगद्गुरु हैं। यह गुह्यतम ज्ञान (Most Secret) केवल अधिकारी व्यक्ति को ही दिया जाता है।

एक बार एक गाँव में एक सन्त कथा करने आये। वे बड़े भाव से कथा करते थे। लोग उनकी कथा बड़ी श्रद्धा से सुनने थे। उसी गाँव में एक सेठ जी रहते थे। वे अत्यधिक धनवान थे। उन्होंने पहले कभी सत्सङ्ग नहीं देखा था। एक बार सत्सङ्ग के समय वे वहाँ से जा रहे थे तभी उनकी मोटरकार खराब हो गई। समय काटने के लिये वे सत्सङ्ग के पण्डाल में जाकर बैठ गये। उनके कानों में स्वामीजी की कथा पड़ने लगी। उनकी ओजस्वी वाणी से सेठ जी को कथा सुनने में आनन्द आने लगा। अब मोटर ठीक होने के पश्चात भी वे कथा पूर्ण होने पर ही गये। अगले दिन का सत्सङ्ग का समय भी ज्ञात किया। अगले दिन सेठजी को देखकर लोगों ने उनका अभिवादन किया। अभिमानवश सेठ जी को लग रहा था कि आज तो स्वामी जी उन्हें देखकर प्रसन्न हो जाएँगे क्योंकि वे उस गाँव के अति विशिष्ट व्यक्ति हैं किन्तु महात्माजी ने तो सेठ जी पर ध्यान भी नहीं दिया, यद्यपि सेठ जी ने महात्मा जी का ध्यान आकर्षित करने का बहुत प्रयत्न किया।

गाँव के व्यक्ति नैवेद्य हेतु विभिन्न खाद्य पदार्थ ला रहे थे तो सेठ जी ने अनुमान लगाया कि कदाचित ऐसा करने से महात्मा जी उन पर ध्यान देंगे। अगले दिन सेठ जी आठ पेटी सेब लेकर उपस्थित हुए और महात्माजी के आसन के समक्ष रख दिये। महात्माजी को अभी भी कोई लेना-देना नहीं था। तभी किसी ने दीक्षा लेने के बारे में महात्मा जी से पूछा तो महात्मा जी ने उसे नियम बतलाते हुये अगले दिन आने के लिये कहा। अब सेठ जी भी दीक्षा लेने के लिये तैयार हो गए और बोले महाराजजी मुझे भी दीक्षा लेनी है। अब महात्माजी ने उन्हें देखा। सेठ जी पूर्णतया अहङ्कार से भरे हुये थे। महात्माजी पहचान गये और बोले, "देखेंगे" और चले गये। प्रथम बार सेठ जी की उपेक्षा हुई किन्तु कथा सुनने के परिणामस्वरूप वे अगले दिन पुनः कथा सुनने आये।

एक व्यक्ति आया तथा उसने महात्माजी से भोजन ग्रहण करने के लिये उसके घर जाने का आग्रह किया। महाराज उसके घर चले गये। अब सेठजी ने पाँचवें दिन महात्माजी से उनके घर भोजन ग्रहण करने का आग्रह किया तो महाराज ने अस्वीकार कर दिया। तब सेठ जी ने महात्मा जी से कहा, "आप स्वयं कहते हैं कि भेदभाव नहीं करना चाहिये किन्तु आप कल किसी व्यक्ति के घर भोजन ग्रहण करने गये थे और आज मुझे मना कर रहे हैं, या आपसे किसी ने कुछ कहा है मेरे बारे में। मैं सारे नियमों का पालन भी कर रहा हूँ। आपकी हर बात भी सुन रहा हूँ किन्तु आपकी कृपा मुझ पर नहीं हो रही है। यह सुनकर स्वामी जी बोले कि ठीक है, मैं चलता हूँ तुम्हारे घर, किन्तु कुछ खाऊँगा नहीं। मैं कमण्डल लेकर आऊँगा उसमें तुम जो कुछ भी डालोगे उसे

आश्रम में आकर खाऊँगा। सेठ जी तैयार हो गये।

घर आकर विचार-विमर्श किया तो सबने मेवे की खीर बनाने का परामर्श दिया। उन्होंने नगर से उच्चतम श्रेणी का मेवा मँगवाया, रात भर दूध औटाकर गाढ़ा करवाया और खीर तैयार करवायी। अपनी पत्नी से बोले कि तुम भोजन की भी तैयारी रखना। हम प्रार्थना करेंगे तो स्वामी जी कदाचित् भोजन यहीं कर लें। कथा पूर्ण होने के पश्चात् स्वामीजी से सेठ जी ने घर चलने का आग्रह किया। स्वामी जी ने सेठ जी को पुनः स्मरण करवाया कि मैं तुम्हारे घर पर कुछ नहीं खाऊँगा। फिर वे अपना कमण्डल लेकर आये।

सेठ जी की स्वच्छ धुली हुई गाड़ी में बैठकर स्वामी जी उनके घर गये। वहाँ भी उनका भव्य स्वागत किया गया तथा आसन ग्रहण करने के लिये दिया गया। अब सेठ जी ने स्वामी जी से भोजन करने का आग्रह किया तो स्वामी जी ने उन्हें मना करते हुये कमण्डल आगे करके उसमें भोजन डालने के लिये कहा। सेठजी ने खीर मँगवायी। कमण्डल में खीर डालने लगे तो उन्हें उसमें से दुर्गन्ध आती प्रतीत हुई। उन्होंने देखा तो उसमें गोबर भरा हुआ था। सेठ ने स्वामी जी से जब यह बात कही तो स्वामी जी बोले, "यही बात तो मैं तुझे समझाना चाहता हूँ कि तेरे माथे में अहङ्कार का गोबर भरा होने के कारण मेरा ज्ञान तेरे मस्तिष्क में नहीं जायेगा और तू मेरी दीक्षा का अधिकारी नहीं बन पाएगा। सेठ जी ने स्वामी जी के चरण पकड़ लिये। स्वामी जी ने सेठ जी को क्षमा कर दिया और भोजन की थाली लगवाने के लिये कहा। इस कथा से हमें यह पता चलता है कि अधिकारी व्यक्ति को ही ज्ञान प्राप्त होता है।

बहुधा हम अनुभव करते हैं कि परिश्रम करने के बाद भी हमें सफलता नहीं प्राप्त हो रही है किन्तु अधिकार प्राप्त होने के बाद ही ज्ञान प्राप्त हो पाता है।

माता सती ने सती रूपी देह को त्यागा और हिमकन्या पार्वती के रूप में जन्म लेकर सहस्त्रों वर्षों तक तपस्या करके शिवजी को प्राप्त किया। उस समय उन्हें अपनी भूल का पश्चाताप हुआ। उन्होंने स्मरण किया कि शिवजी उन्हें राम जी कथा सुना रहे थे और वे उसे अश्रद्धा से सुन रही थीं किन्तु अब मैं श्रद्धावान हूँ, अब आप मुझे राम जी की कथा सुनाइये। ऐसा कहने पर शिवजी उन्हें रामकथा सुनाने हेतु तैयार हुये।

गुढ़उ तत्व न साधु दुरावहिं।
आरत अधिकारी जहँ पावहिं।।

साधु पुरुष गूढ़ तत्त्व को आर्त अधिकारी से नहीं छिपाते हैं। इस बात को मानकर ही शिवजी ने पार्वतीजी को रामकथा सुनाई। यही रामकथा तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में लिखी।

"**मोक्ष्यसेशुभात**"
मैं जो बता रहा हूँ, वह कोई साधारण बात नहीं है। इसके अर्थ को समझकर तू इस दुःख रूपी संसार से मुक्त हो जायेगा।

सत्रहवें अध्याय में श्रीभगवान् बताते हैं-

सत्यं प्रियहितं च यत्।

किसी बात को कहने की तीन विधियाँ होती हैं।

सत्य, प्रिय तथा हितकारी।

श्रीभगवान् यहाँ हितकारी बात बता रहे हैं क्योंकि अर्जुन अभी क्षोभ में हैं-

गाण्डीवं स्रंसते हस्तात् त्वक्चैव परिदह्यते।

अर्जुन के हाथ से गाण्डीव छूटा जा रहा है।

अर्जुन शोक तथा विषाद में हैं जबकि श्रीकृष्ण उन्हें जन्म-मरण के चक्र से ही मुक्त करना चाहते हैं।

9.2

राजविद्या राजगुह्यं(म्), पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं(न्) धर्म्यं(म्), सुसुखं(ङ्) कर्तुमव्ययम्।।9.2।।

यह (विज्ञान सहित ज्ञान अर्थात् समग्र रूप) सम्पूर्ण विद्याओं का राजा (और) सम्पूर्ण गोपनीयों का राजा है। यह अति पवित्र (तथा) अतिश्रेष्ठ है (और) इसका फल भी प्रत्यक्ष है। यह धर्ममय है, अविनाशी है (और) करने में बहुत सुगम है अर्थात् इसको प्राप्त करना बहुत सुगम है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं, "हे अर्जुन! यह विज्ञान सहित ज्ञान सब ज्ञानों का राजा है।

श्रीभगवान् ने अलग-अलग विशेषण लगाकर इस ज्ञान की महिमा का वर्णन किया।
यह विद्या है, ज्ञान है, रहस्यमय/गुह्यत्तम और पवित्र है। राजविद्या है सुसुखम है। राज करने की विद्या है? नहीं यह विद्याओं का राजा है।
यह ब्रह्मज्ञान है अर्थात् सभी ज्ञानों में सबसे ऊपर, जिसे प्राप्त करने के बाद कोई और ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं होती। यह पवित्र और उत्तम ज्ञान है। यह ज्ञान प्रत्यक्ष फल देने वाला है।

तो क्या यह तुरन्त फल देगा?

इस बात को इस तरह समझते हैं कि जब कन्या थोड़ी बड़ी होती है तो माँ उसे रोटी बनाना सिखाती है। माँ उसे पहले रोटी बेल कर बनाना सिखाती है कि इस तरह से बनाए। माँ की रोटी तो गोल बनती है पर बिटिया की रोटी आडी़ टेढ़ी, चपटी बनती है तो माँ उसे बताती है कि बेलन को किस तरह घुमा कर बनाएगी तो रोटी गोल बनेगी। बिटिया फिर प्रयास करती है, फिर भी रोटी गोल नहीं बनती है। तब माँ कहती है, "तुम चिन्ता मत करो" यदि तुम प्रतिदिन प्रयास करोगी तो एक दिन रोटी गोल बनाने लगोगी। दो-तीन महीने में बिटिया गोल रोटी बनाना सीख जाती है और तब उसकी माँ उसकी प्रशंसा करती है। बेटी कुछ दिनों में रोटी गोल बनाना सीख गई। यह प्रत्यक्ष परिणाम है।

अव्ययम्- श्रीभगवान् कहते हैं, "यह ज्ञान कभी नष्ट नहीं होता" इसीलिए गीता परिवार द्वारा आग्रह किया जाता है कि गीताजी को कण्ठस्थ करने का प्रयास करें। केवल इसी जन्म में नहीं, अगले जन्म में भी गीताजी हमारे मस्तिष्क में रहने वाली हैं।

जयपुर का तीन वर्ष का बालक समर्थ गीताव्रती हो गया है, क्योंकि वह पूर्वजन्म का गीताव्रती है। इस जन्म में तो केवल माता के साथ सीखने पर ही उसको पूरा स्मरण हो गया, उसकी चेतना शक्ति जागृत हो गई।
अव्यय होने के साथ ही विज्ञान सहित ज्ञान को मथना पड़ता है। एक बार ज्ञान प्राप्त हो गया तो वह सदैव रहेगा, ऐसा नहीं होता। उसको मथते रहना पड़ता है।

एक बार रामजी बैठे हुए थे। लङ्का जीतकर लौटने के पश्चात रामजी ने हनुमानजी से पूछा, "हम यहाँ पूरा परिवार एकत्र हैं, मेरे भाई हैं, मेरी पत्नी है। तुम्हारा मेरा सम्बन्ध क्या है? हम आपके हैं कौन?" सीता जी सोचने लगीं, "आज रामजी को क्या हो गया? वे ऐसे क्यों पूछ रहे हैं? हनुमान जी को बुरा लग गया तो।" भरतजी भी सङ्कोच में पड़ गए। हनुमान जी ने उत्तर दिया, "प्रभु! मैं आपको तीन सम्बन्ध बता सकता हूँ।" सब आश्चर्यचकित हो गए।

रामजी ने कहा, "बताइए।"

हनुमान जी बोले, "व्यवहार की दृष्टि से देखें तो आप स्वामी हैं, मैं सेवक हूँ। आप मालिक है, मैं नौकर हूँ।"

भरत जी ने पूछा, "दूसरा?" हनुमान जी ने उत्तर दिया, "आध्यात्मिक दृष्टि से देखा जाए तो आप ब्रह्म हैं, मैं जीव हूँ। आप भगवान हैं, मैं भक्त हूँ।"

भरत जी ने आश्चर्य से पूछा, "अब तीसरा कौन सा है?" हनुमान जी ने कहा, "तत्त्व दृष्टि से देखा जाए तो जो आप हैं, वही मैं हूँ।

एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति।
एक ही ब्रह्म है दूसरा कोई नहीं।
अहम् ब्रह्म अस्मि तत् त्वस्मि।
There is no difference
जो आप हैं, वही मैं हूँ।"

ज्ञान अव्यय होने पर भी नष्ट कैसे हो जाता है? इसके लिए कथा सुनते हैं।

उत्तरकाण्ड में काकभुशुण्डि महाराज की एक कथा है -

गरुड़ जी महाराज को एक सन्देह हो गया कि श्रीराम तथा लक्ष्मण जी के नागपाश को काटने के लिए मुझे बुलाया गया है। वास्तव में भगवान् श्रीराम मेरे भगवान् विष्णुजी के अवतार हैं? ब्रह्म हैं? ईश्वर हैं? यह मुझे समझ नहीं आ रहा? गरुड़ जी को सन्देह हो गया तो वह बड़े विचलित और परेशान हो गए। उन्होंने सोचा विष्णु भगवान जी को पूछूँ तो सङ्कोच आया कि अपने स्वामी पर ही शङ्का कर रहा हूँ, ऐसा प्रश्न कैसे कर सकता हूँ? तो गरुड़ जी महाराज शिवजी के पास गए।

शिवजी ने कहा- "खग ही जाने खग की भाषा, तुम काकभुशुण्डि जी के पास जाओ।" गरुड़ जी ने सोचा कि "मैं पक्षीराज गरुड़ एक निकृष्ट पक्षी कौवे के पास जाऊँ?

तबहि होइ सब संसय भङ्गा।

जब बहु काल करिअ सतसङ्गा।।

शिवजी ने कहा कि उनके पास दीर्घकाल तक रहना, तब जाकर तुम्हारे संशय भङ्ग होंगे। वहाँ जाकर गरुड़ जी ने श्रद्धापूर्वक काकभुशुण्डि जी से बहुत सारे प्रश्न किये तथा उन्होंने सारे प्रश्नों के उत्तर दिये तो गरुड़ जी हैरान रह गये। गरुड़ जी को आश्चर्य हुआ कि एक कौवे की योनि में कौन सिद्ध महापुरुष य़हाँ विराजमान है जो इतनी गहरी बातें इतनी सहजता से कहने वाला हो सकता है? गरुड़ जी ने प्रश्न किया और काकभुशुण्डि जी ने बहुत सारा समाधान किया।

ज्ञान कम नहीं पड़ता किन्तु ज्ञान पर भी अज्ञान आच्छादित हो जाता है इसलिये श्रीभगवान् अर्जुन से कहते हैं -

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ।

हमारे परम पूज्य स्वामी जी हो या ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय स्वामी रामसुखदास जी, जो जीवनपर्यन्त माला का जाप करते रहे। उन्होंने जीवन त्याग के क्षण तक नाम जप नहीं छोड़ा।

परमपूज्य स्वामीजी जिन्हें भगवद्प्राप्ति हो चुकी है वे भी अपने साधना के नियमों को कभी नहीं तोड़ते हैं। यदि उन्हें सुबह पाँच बजे की फ्लाइट से भी जाना हो तो भी वे रात में दो बजे उठकर अपनी नित्य पूजा करके ही जाते हैं।

गरुड़ जी ने कहा कि मुझे शेष समाधान बाद में दीजिएगा, पहले मुझे जो शङ्का हो गई है, उसका समाधान कीजिए। आप कौन हैं? पहले मुझे यह बताइए? आप पूर्वजन्म के कोई बड़े सिद्ध योगी हैं। यदि इतने बड़े योगी हैं तो आपको इस योनि में क्यों आना पड़ा, ऐसा क्या कारण है? पहले आप मुझे अपने पूर्वजन्म की कथा बताइए।

काकभुशुण्डि जी बोले कि "एक जन्म की कथा सुनने से काम नहीं चलेगा। तुम्हें सत्ताईस कल्पों की कथा सुननी पड़ेगी। लाखों वर्षों

का एक कल्प होता है।

एक सहस्र चतुर्युगी का ब्रह्माजी का एक दिन होता है। ब्रह्माजी के एक दिन में चौदह मनु होते हैं। एक मनु में इकहत्तर चतुर्युगी होती है। एक सहस्र बार चारों युग बीतते हैं तब एक कल्प पूर्ण होता है। चार लाख बत्तीस हज़ार वर्ष का कलयुग, आठ लाख चौंसठ हज़ार वर्ष का द्वापर, बारह लाख छियानबे हज़ार वर्ष का त्रेता तथा सत्रह लाख अट्ठाईस हज़ार वर्ष का सतयुग होता है। इस प्रकार सैंतालीस लाख बीस हज़ार वर्ष की एक चतुर्युगी होती है। इसका एक हज़ार गुना अवधि की ब्रह्माजी की आयु होती है।

गरुड़ जी हैरान रह गए, "सत्ताईस कल्पों की कथा? आप इतने कल्पों से यहाँ पर हैं? काकभुशुण्डि जी मुस्कुरा कर बोले, हाँ! यदि पूरी बात समझनी है तो इतनी कथा तो सुननी पड़ेगी। गरुड़ जी बोले, यदि आप मुझे सुनाने के लिए तैयार हैं तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। आप जैसे महापुरुष की कथा सुनने से तो मेरा कल्याण हो जाएगा। आप बताइए, आप कौन हैं?

काकभुशुण्डि जी बोले, हजारों वर्ष पूर्व, हजारों जन्म पूर्व, सत्ताइस कल्प पूर्व, मेरा जन्म अयोध्या में ब्राह्मण कुल में हुआ था और मैं उत्तम भक्त था। संयोग से अयोध्या में अकाल पड़ गया। अकाल पड़ा तो सभी लोग अयोध्या छोड़कर इधर-उधर जाने लगे। मैं अपनी मण्डली के साथ उज्जैन आ गया। अयोध्या में हम रामजी की कथा करते थे। संयोग से मैं जिस आश्रम में पहुँचा, वहाँ के गुरुजी बड़े दयालु थे और वे भी शिवजी के परम भक्त थे। मैं वहाँ रहने लगा तो धीरे-धीरे मेरी शिवजी की भक्ति हो गई। उत्तम गुरु के सान्निध्य में मैंने उनसे शिव मन्त्र प्राप्त किया और जपने लग गया।

बहुत वर्षों तक भक्ति करते हुए मेरी भक्ति प्रगाढ़ हो गई। ऐसे में मुझे एक दिन गुरुजी ने कहा कि बेटा तुम तो अयोध्या के रहने वाले हो तो तुमने वहाँ रामजी की बहुत सी कथाएँ सुनी होंगी। तुम मुझे रामजी की कथा सुनाओ। मैंने उल्टी बुद्धि से शिवजी की भक्ति की और इस कारण मेरे मन में इस प्रकार गड़बड़ी हो गई। मैंने गुरुजी को उत्तर दिया कि आप भी कैसी बात करते हैं? आप महाकाल महादेव के भक्त हैं, क्या आप भी रामकथा सुनना चाहते हैं? अब तो हम शिवभक्त हैं। अब हमें रामकथा की क्या आवश्यकता है? गुरुजी बोले, तुम कैसी बातें कर रहे हो! गुरुजी ने शिवजी को हरिजी का सेवक कहा तो यह सुनकर मेरा हृदय जल गया। मेरी फिर मेरे मन में गुरु जी के प्रति आदर समाप्त हो गया और मैं वहाँ से निकल गया।

एक बार मैं शिवालय के अन्दर बैठकर शिवजी का जप कर रहा था। उस समय गुरुदेव वहाँ पधारे। मैंने उन्हें आते हुए देख लिया परन्तु आँखें बन्द करके जप करता रहा कि मुझे उन्हें प्रणाम न करना पड़े।

एक बार हर मंदिर जपत रहेउँ सिव नाम।

गुर आयउ अभिमान तें उठि नहिं कीन्ह प्रनाम॥

अपने अभिमान में मैंने गुरु का अपमान किया।

सो दयाल नहिं कहेउ कछु उर न रोष लवलेस।
अति अघ गुर अपमानता सहि नहिं सके महेस॥

गुरुजी दयालु थे उन्होंने ध्यान नहीं दिया कि मैंने उन्हें प्रणाम नहीं किया परन्तु साक्षात् महादेव के सामने मैनें अपने गुरु का अपमान किया जो कि शिवजी के बड़े भक्त थे। शिवजी को यह अच्छा नहीं लगा और उसी समय आकाशवाणी हुई-

मंदिर माझ भई नभ बानी। रे हतभाग्य अग्य अभिमानी।।
जद्यपि तव गुर कें नहिं क्रोधा।अति कृपाल चित सम्यक बोधा।।

मन्दिर में आकाशवाणी हुई। शिवजी बोले, "मूर्ख! अभिमानी! गुरुजी अत्यन्त दयालु हैं। हे मूर्ख! मैं तुम्हें श्राप दूँगा। गुरु का नीति विरोध मुझे अच्छा नहीं लगता। तुम्हारा वेद मार्ग भ्रष्ट हो जाएगा। जो अपने गुरु से ईर्ष्या करते हैं वे करोड़ों लोकों तक नरक में पड़ते हैं और वहाँ से निकलकर पशु, पक्षी योनि प्राप्त करते हैं और हजारों जन्म तक दु:ख पाते हैं। हे पापी! तुम गुरु के सामने इसी तरह बैठे रहे। तेरी बुद्धि पाप से भर गई है, जा तू सर्प हो जा। इस अधोगति में आकर भी बड़े भारी पेड़ के खोखर में जाकर पड़ा रहा' जब ऐसी आकाशवाणी हुई तो मैं काँपने लग गया और मुझसे ज्यादा मेरे गुरुजी काँपने लग गए।

हाहाकार कीन्ह गुर दारुन सुनि सिव साप।।
कंपित मोहि बिलोकि अति उर उपजा परिताप।।
करि दंडवत सप्रेम द्विज सिव सन्मुख कर जोरि।
बिनय करत गदगद स्वर समुझि घोर गति मोरि।।

गुरु जी ने महादेव के आगे हाहाकार किया तथा तुरन्त ही दण्डवत करके शिवजी को प्रणाम किया और शिवजी को प्रसन्न करने के लिए, मेरी गति का विचार करके शिवजी की स्तुति करना आरम्भ किया। गुरुजी ने रुद्राष्टकम् गाया। यह काकभुशुण्डि जी के गुरु जी की बनायी हुई स्तुति है-

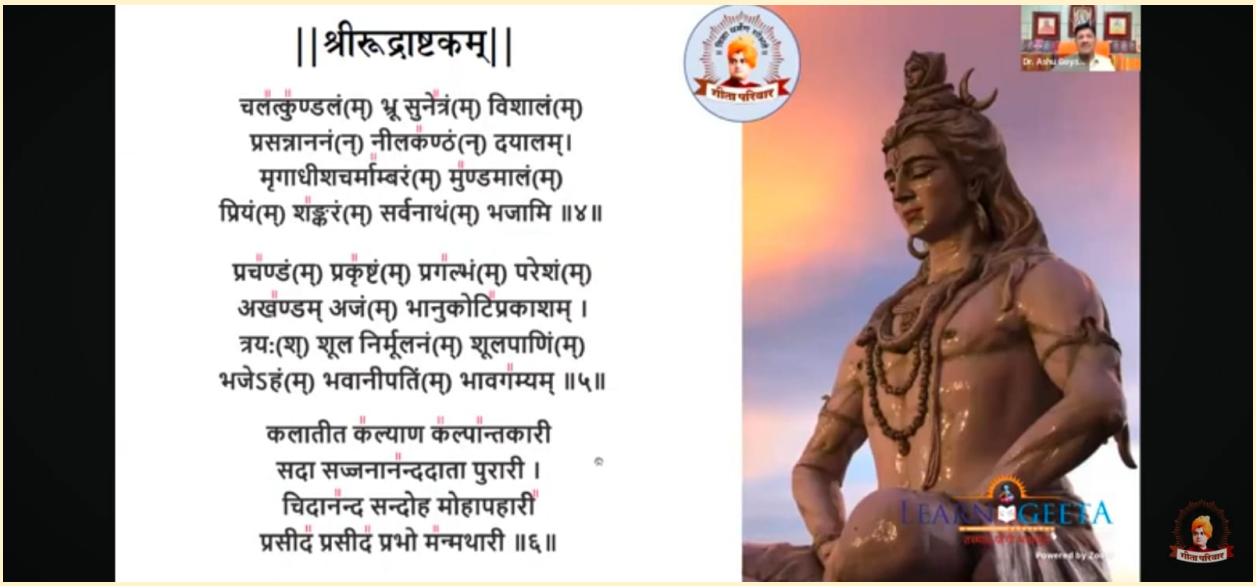

गुरु जी ने अत्यन्त भावविभोर होकर यह शिवस्तुति गायी जिससे शिवजी अत्यधिक प्रसन्न हुए। उन्होंने गुरु जी की विनती सुन ली। मेरे ऊपर मेरे गुरु जी का प्रेम दिखाई दिया। पुनः आकाशवाणी हुई कि हे द्विज श्रेष्ठ वर माँग।

जो प्रसन्न प्रभु मो पर, नाथ दीन पर नेहू।
निज पद भक्ति देहूं प्रभु, पुनि दूसर वर देहू।।

हे प्रभु यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो पहले मुझे अपनी भक्ति प्रदान
कीजिए फिर कोई दूसरा वर दीजिए।

तब माया बस जीव जड़, सन्त फिर भुलान।
जेहिं पर क्रोध न करें प्रभु, कृपा सिन्धु भगवान।।

हे प्रभु आप कुछ ऐसा करिये कि थोड़े समय में ही मेरे शिष्य को इस पाप से मुक्ति मिल जाए। आप वह कर दीजिए जिससे इसका परम कल्याण हो जाए।

आकाशवाणी हुई कि **एवमस्तु**।

यद्यपि इसने भयानक पाप किया है फिर भी मैं इसे मुक्त करता हूँ। तुम्हारे विवेक से तुम्हारा मन तुम्हारे वंश में आ जायेगा। अब मेरे आशीर्वाद से तुम्हारे हृदय में रामजी की प्रगाढ़ भक्ति बसेगी। तुम चाहो तो इस कौवे योनि को छोड़कर पुनः ब्राह्मण योनि में जा सकते हो" परन्तु मैंने मना कर दिया कि मैं तो अब इसी योनि में रहना चाहूँगा और इस योनि में रहकर ही मैं अपनी भक्ति करना चाहता हूँ। शिव जी की कृपा से मेरी भक्ति निरन्तर निर्बाध रूप से जारी रही, किन्तु निर्गुण की उपासना मुझे अच्छी नहीं लगती थी। भक्ति करते-करते एक समय ऐसा आया कि सुमेरु पर्वत के शिखर पर मुझे लोमश ऋषि के दर्शन हुए। लोमश ऋषि हमारे इतिहास के श्रेष्ठतम ऋषियों में से एक हैं। मैंने ऋषि को प्रणाम किया और उनसे सगुण उपासना का ज्ञान देने का आग्रह किया।

लोमश ऋषि ने मुझे आशीर्वाद दिया कि तुम जिस आश्रम में रहोगे उसके चारों ओर अविद्या, माया नहीं व्यापेगी। तुम ज्ञान द्वारा बँधे रहोगे। तुम इच्छामृत्यु रखोगे। तुम जब तक चाहोगे तब तक तुम्हारा शरीर रहेगा और तुम सब बातों को बिना परिश्रम जान सकोगे और रामजी के चरणों में तुम्हारा नित्य प्रेम होगा। गुरु का आशीर्वाद सुनकर आकाश में ध्वनि हुई कि तुम्हारा वचन सत्य होगा।

आकाशवाणी सुनकर मुझे बहुत हर्ष हुआ और मेरा सारा संशय चला गया। गुरु के चरण-कमल में शीश नवा कर मैं बारम्बार हर्षित होकर इस आश्रम में आया। सत्ताईस कल्प मैंने यहाँ इस आश्रम में निवास किया। अब मैं यहाँ सदा श्रीराम जी के चरणों में निवास करता हूँ। पशु-पक्षी आकर मुझे सुनते हैं। जब-जब श्रीराम पुरुषोत्तम भगवान् जी का अवतार होता है, अर्थात् सत्ताईस कल्पों में सत्ताईस बार मैंने राम जी के दर्शन किए और हर कल्प में मैंने रामजी के शिष्य के रूप में आशीर्वाद प्राप्त किया। जब वह शिशु रूप में होते हैं तब मैं उनके दर्शन करने जाता हूँ और फिर वापस आ जाता हूँ।

इस सारी कथा में मुख्य बात यह है कि इतना बड़ा वरदान पाने के बाद भी, सत्ताईस जन्मों में और सत्ताईस कल्पों में रामजी के दर्शन करने के बाद, अपनी स्मृति न भूलने के बाद भी, श्रीभगवान की माया कितनी प्रबल है कि एक जन्म में जब काकभुशुण्डि रामजी के दर्शन करने गए और बालक रूप में रामजी को खेलते हुए देख उनके मन में सन्देह आ गया कि क्या वास्तव में ये परमात्मा हैं? मेरे हृदय में सन्देह आया तो भगवान श्रीराम को पता चल गया। उस बालक राम ने मेरी और हाथ बढ़ाया और मैं थोड़ा उछल कर दूर चला गया। जब मैं डर गया तो भगवान् राम ने मेरी ओर, और हाथ बढ़ाया। मैं फिर दूर चला गया। मैंने देखा कि मैं जितना दूर जा रहा हूँ वह हाथ मेरी तरफ बढ़ता ही जा रहा है। फिर मैंने देखा कि श्रीभगवान् तो वहीं हैं और उनका हाथ ही बढ़ता जा रहा है। मैं वहाँ से उड़ चला। उड़ने के बाद भी वह हाथ आकाश में भी मेरी और बढ़ता चला गया। मुझे वरदान की शक्ति से दूसरे लोक में जाने का सामर्थ्य प्राप्त था तो मैं पृथ्वी लोक से स्वर्ग लोक चला गया। सारे लोकों में भटक कर पुन: राम जी के चरणों में वापस आया और उनको सर नवाया। श्रीभगवान् की माया ने मेरी मति को आच्छादित कर दिया था। यह मुझे दिखाने के लिए था कि तुम ईश्वर की माया से नहीं बच सकते हो।

यदि जीवों में अखण्ड ज्ञान रह जाए तो ईश्वर और जीव में क्या भेद रह जाएगा? माया ईश्वर के वश में है। हम माया के वश में आते हैं और माया ईश्वर के वश में है। जीव परतन्त्र है, ईश्वर स्वतन्त्र है। जीव अनेक हैं, ईश्वर एक है।

अव्यय होने पर भी समस्त ज्ञान माया द्वारा ढक दिया जाता है।

9.3

अश्रद्दधानाः(फ्) पुरुषा, धर्मस्यास्य परन्तप।
अप्राप्य मां(न्) निवर्तन्ते, मृत्युसंसारवर्त्मनि।।9.3।।

हे परंतप! इस धर्म की महिमा पर श्रद्धा न रखने वाले मनुष्य मुझे प्राप्त न होकर मृत्युरूप संसार के मार्ग में लौटते रहते हैं अर्थात् बार-बार जन्मते-मरते रहते हैं।

विवेचन- श्रीभगवान् की भक्ति में जो सबसे बड़ा तारक है वह है श्रद्धा।
सम्पूर्ण श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीभगवान् ने श्रद्धा की बात बारम्बार कही है।
ज्ञानमार्ग हो, भक्तिमार्ग हो या कर्ममार्ग हो, श्रद्धा के बिना कुछ प्राप्त नहीं किया जा सकता।

श्रीभगवान् चौथे, पाँचवें तथा छठे श्लोक में ज्ञान का अद्भुत रहस्य बताते हैं। यह जल्दी समझ में नहीं आएगा क्योंकि थोड़ा जटिल है। यह भक्तिमार्ग के काम का नहीं है इसलिए ज्यादा चिन्तित नहीं होना है। हम इसे पढ़ेंगे, समझेंगे पर समझ में आएगा नहीं।

9.4, 9.5, 9.6

मया ततमिदं(म्) सर्वं(ञ्), जगदव्यक्तमूर्तिना।

मत्स्थानि सर्वभूतानि, न चाहं(न्) तेष्ववस्थितः।।9.4।।

न च मत्स्थानि भूतानि, पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो, ममात्मा भूतभावनः।।9.5।।

यथाकाशस्थितो नित्यं(वँ), वायुः(स्) सर्वत्रगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि, मत्स्थानीत्युपधारय॥9.6॥

यह सब संसार मेरे निराकार स्वरूप से व्याप्त है। सम्पूर्ण प्राणी मुझ में स्थित हैं; परन्तु मैं उनमें स्थित नहीं हूँ तथा (वे) प्राणी (भी) मुझ में स्थित नहीं हैं - मेरे इस ईश्वर-सम्बन्धी योग (सामर्थ्य) को देख ! सम्पूर्ण प्राणियों को उत्पन्न करने वाला और प्राणियों का धारण, भरण-पोषण करने वाला मेरा स्वरूप उन प्राणियों में स्थित नहीं है। (9.4-9.5)
जैसे सब जगह विचरने वाली महान् वायु नित्य ही आकाश में स्थित रहती है, ऐसे ही सम्पूर्ण प्राणी मुझमें ही स्थित रहते हैं - ऐसा तुम मान लो।

विवेचन - श्रीभगवान् कहते हैं कि "यह सारी सृष्टि, यह सारा जगत मुझसे ही परिपूर्ण है, किन्तु मैं उनमें नहीं हूँ। सब कुछ मेरे द्वारा बना, मेरे सङ्कल्प से बना, पर मैं उनमें नहीं और वे सारे भूत भी मुझ में स्थित नहीं है।"

पहले श्लोक में श्रीभगवान् ने कहा, "मैं उनमें नहीं", दूसरे श्लोक में कहा, "वे मुझ में नहीं।" जैसे आकाश में उत्पन्न होकर सर्वत्र विचरने वाला वायु।
सब कुछ एक ही ब्रह्मतत्त्व से बना है, दूसरा कुछ है ही नहीं, लेकिन न तो वे मुझ में हैं, न मैं उनमें हूँ।

संसार में परमात्मा है, परमात्मा में संसार है, परन्तु संसार में परमात्मा नहीं और परमात्मा में संसार नहीं, ऐसा श्रीभगवान् कह रहे हैं।

महात्माजन उदाहरण देते हैं कि जैसे हम जल में तरङ्गें देखते हैं। हम सभी ने देखा कि समुद्र में, नदी में तरङ्गें आती हैं। ये तरङ्गें किसके कारण उत्पन्न होती हैं? जल के कारण उत्पन्न होती हैं। जहाँ जल नहीं वहाँ तरङ्ग नहीं। यदि हम तरङ्गों को पकड़ने जाएँ तो क्या तरङ्गें हमारे हाथ में आएँगी? जल में तरङ्ग है, परन्तु तरङ्ग में जल नहीं है। तरङ्गों को पकड़ा तो हाथ में जल आ गया। दिखने पर सामने स्पष्ट दिखती है पर न तो जल में तरङ्ग है और न तरङ्ग में जल है। जैसे जल को हाथ में लिया तो उसमें तरङ्ग नहीं है, जल ही हाथ में आया।

अब दूसरे उदाहरण से इसे समझने का प्रयास करते हैं- एक कलाकार ने कैनवस पर स्याही और कलम से एक पर्वत बनाया, नदी बनायी, मनुष्य बनाया, झोपड़ी बनाई। उसकी स्याही की शीशी में क्या ये सब- मनुष्य, पर्वत, नदी आदि थे? लेकिन उसकी स्याही से बन गए। अब जब ये सब बन गए तो उसमें से वापस स्याही प्राप्त कर सकते हैं क्या? नहीं कर सकते। न पेड़ में स्याही है और न ही स्याही में पेड़ है।

स्विट्जरलैण्ड में इग्ल्यू पाए जाते हैं। उस इग्ल्यू में बर्फ है क्या? जबकि ये बने बर्फ से होते हैं।

दूध से दही बनता है। जब दूध से एक बार दही बन गया तो क्या उस दही से फिर से दूध बन सकता है? जब तक दूध है, उसमें से दही प्राप्त कर सकते हैं क्या? दूध से दही बना पर दूध में दही दिखता नहीं है। दही में दूध दिखता है क्या? दूध से ही दही बनने पर न तो दूध में दही दिखता है और न दही में दूध दिखता है। इसी तरह श्रीभगवान् कह रहे हैं कि सब मुझसे ही बना है पर न तो वे मुझ में हैं, न मैं उन में हूँ।

दिन में बारह बजे सड़क पर यदि हम खड़े होते हैं तो हमें हमारी प्रतिछाया दिखती है। जब तक आप नहीं थे तब तक वह छाया

नहीं थी। आप वहाँ से चले जाते हैं तो छाया भी वहाँ से चली जाती है। आप चलते हैं तो छाया भी आपके साथ चलती है। वह छाया क्या आपके अन्दर थी जो निकल कर सड़क पर चल रही थी? वह आपके भीतर नहीं थी। आपके द्वारा बनी है पर आपके अन्दर है क्या? उस छाया में आप हैं क्या? नहीं, उस छाया में भी आप नहीं हैं। छाया आपके कारण बनी पर न तो आप छाया में हैं और न ही छाया आप में।

वास्तव में वह चैतन्य परमात्मा, जिससे जड़ तत्त्व का निर्माण हुआ, यह जड़ तत्त्व नाशवान है और वह परमात्मा चैतन्य अविनाशी है। वह अक्षुण्ण है। न उसका रूप बदलता है, न घटता, न बढ़ता है, न उसका जन्म होता है, न मरता है परन्तु यह जड़ संसार निरन्तर परिवर्तनशील है। घटता-बढ़ता रहता है, नष्ट होता रहता है।

संसरति इति संसार।
Every time it is changing. It cannot stand still for a moment.

परन्तु परमात्मा वैसे के वैसे ही हैं। हम जब जन्मे थे, तब का चित्र अलग था, बड़े हुए तो अलग, जब पच्चीस वर्ष के हुए तो कुछ अलग, पचास वर्ष में कुछ अलग। शरीर हर पल बदलता रहा पर शरीर को धारण करने वाला वह परमात्मा कभी नहीं बदला। अस्सी वर्ष का होने पर भी वह नहीं बदला।

वह कौन है जो सोते हुए न सोते हुए को देखता है? वह मैं (परमात्मा) हूँ, जो कभी नहीं बदलता। शरीर के मरने के बाद भी वह नया शरीर धारण करेगा और वैसा का वैसा ही रहेगा। न कभी मरता है न कभी वृद्ध होता है। अब जब परमात्मा जड़ तत्त्व में आ गए तो जड़ तत्व बदलेगा क्या? इसलिए परमात्मा कहते हैं "मैं जड़ तत्त्व में नहीं हूँ। अगर मैं जड़ तत्त्व में हो गया तो यह जड़ तत्त्व अविनाशी हो जाएगा।" इसलिए यह जड़ तत्त्व परमात्मा के द्वारा निर्मित है। "जैसे तुम्हें तुम्हारी छाया दिखती है, इसी तरह मेरे प्रतिबिम्ब से सारे जड़ तत्त्वों का निर्माण होता है।"

" ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या।"

9.7

सर्वभूतानि कौन्तेय, प्रकृतिं(यँ) यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि, कल्पादौ विसृजाम्यहम्॥9.7॥

हे कुन्तीनन्दन ! कल्पों का क्षय होने पर (महाप्रलय के समय) सम्पूर्ण प्राणी मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं (और) कल्पों के आदि में (महासर्ग के समय) मैं फिर उनकी रचना करता हूँ।

विवेचन - हे अर्जुन! कल्पों के आदि में सब भूत मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं और कल्पों के अन्त में, मैं उनको वापस ले लेता हूँ।

जिस प्रकार बच्चे मैजिक क्ले से खेलते हैं। कुछ बच्चे उससे अलग-अलग प्रकार की वस्तुएँ जैसे पहाड़, नदी, खिलौने आदि बनाते हैं तो माँ आती है और उन्हें डाँट देती है कि पूरा कमरा फैला दिया। फिर सब कुछ उठा कर उसका एक कन्दुक सा बनाकर किनारे रख देती है। बच्चा शुरू में रोता है, परेशान होता है और फिर अगले दिन फिर इस कन्दुक/बॉल को उठाता है और दोबारा बनाना शुरू कर देता है।

श्रीभगवान् कहते हैं इसी प्रकार ब्रह्मा जी सारे संसार का विस्तार करते हैं फिर जब मुझे प्रलय करनी होती है तो मैं वापस इनको उठाकर एक पिण्ड बनाकर खत्म कर देता हूँ। श्रीभगवान् कहते हैं कि तुम एक बार फिर पिण्ड बन जाओगे, पर यह गिनती कभी खत्म नहीं होगी।

जिस प्रकार बैंक से पैसा कर्ज पर लेकर उसे सारा खर्च कर देते हैं तो इससे हमारा कर्ज खत्म नहीं होता बल्कि हमारे खाते में तो चढ़ा ही रहता है।

9.8

प्रकृतिं(म्) स्वामवष्टभ्य, विसृजामि पुनः(फ्) पुनः।
भूतग्राममिमं(ङ्) कृत्स्नम्, अवशं(म्) प्रकृतेर्वशात्।।9.8।।

प्रकृति के वश में होने से परतन्त्र हुए इस सम्पूर्ण प्राणी समुदाय की (कल्पों के आदि में) मैं अपनी प्रकृति को वश में करके बार-बार रचना करता हूँ।

विवेचन- हे अर्जुन! यह सर्ग ओर निसर्ग निरन्तर प्रलय है। सर्ग निरन्तर प्रक्रिया है। मैं अपनी प्रकृति को और अङ्गीकार करके स्वभाव से, बल से परतन्त्र हुए सम्पूर्ण समुदाय को बार-बार कर्मों के अनुसार रचता हूँ।

पुनः ब्रह्मा जी पिण्ड से बनाते हैं कि किसको गधा, कुत्ता या पेड़ बनाना है या मनुष्य, मछली या किसी को श्याम-श्वेत या धनवान-निर्धन बनाना है?
यह सब हमारे पूर्व जन्मों के कर्मों के अनुसार तय होता है। इसकी गणना कभी समाप्त नहीं होती है।

ब्रह्मा जी दोबारा सृष्टि की रचना करते हैं और पुनः-पुनः उनके कर्मों के फल के अनुसार सबकी फिर से रचना कर देते हैं तो कल्प की समाप्ति पर, विसर्जन पर, प्रलय पर सारे भूतों का नाश होने पर भी जब उनका वापस सृजन होता है तो वह उनके कर्मों के अनुसार ही होता है, उनका खाता कभी बराबर नहीं होता है।

9.9

न च मां(न्) तानि कर्माणि, निबध्नन्ति धनञ्जय।
उदासीनवदासीनम्, असक्तं(न्) तेषु कर्मसु।।9.9।।

हे धनञ्जय ! उन (सृष्टि-रचना आदि) कर्मों में अनासक्त और उदासीन की तरह रहते हुए मुझे वे कर्म नहीं बाँधते।

विवेचन - श्रीभगवान् कहते हैं, "हे अर्जुन! मैंने तुम्हें कहा है कि सबको अपने कर्मों का फल मिलता है तो क्या मुझे भी अपने कर्मों का फल भुगतना पड़ता है?

मैं बार-बार सृष्टि को रचता हूँ, बनाता हूँ तो मेरे भी कर्म बनते हैं क्या? मेरे भी बनते हैं, क्योंकि कर्मों का फल मुझे और तुम्हें एक बराबर मिलता है, परन्तु हे अर्जुन! उन कर्मों में आसक्ति रहित और उदासीन के सदृश स्थित उस परमात्मा को वे कर्म नहीं बाँधते हैं। मैं सारे कर्म करता हूँ लेकिन उसमें मेरी आसक्ति नहीं होती है।"

सूर्य प्रकाश देता है। उस प्रकाश में कोई कृषि करता है, कोई उस प्रकाश में चोरी करता है, कोई बहुत अच्छे-अच्छे काम कर लेता है और उसी के कारण कोई बुरे काम भी कर लेता है, परन्तु सूर्य न अच्छे कामों में अपने को बाँधता है और न ही बुरे कामों में बाँधता है कि किसी ने गलत काम किया है तो सूर्य का प्रकाश उसके घर नहीं आएगा, ऐसा नहीं है या जिसने अच्छा काम किया है उसे दुगना प्रकाश मिलेगा, ऐसा भी नहीं होता है। वे तो सबको एक सा ही प्रकाश देते हैं क्योंकि श्रीभगवान् उदासीन हैं। वे सभी को एक समान मानते हैं।

एक सुन्दर से भजन के साथ विवेचन सम्पन्न हुआ-

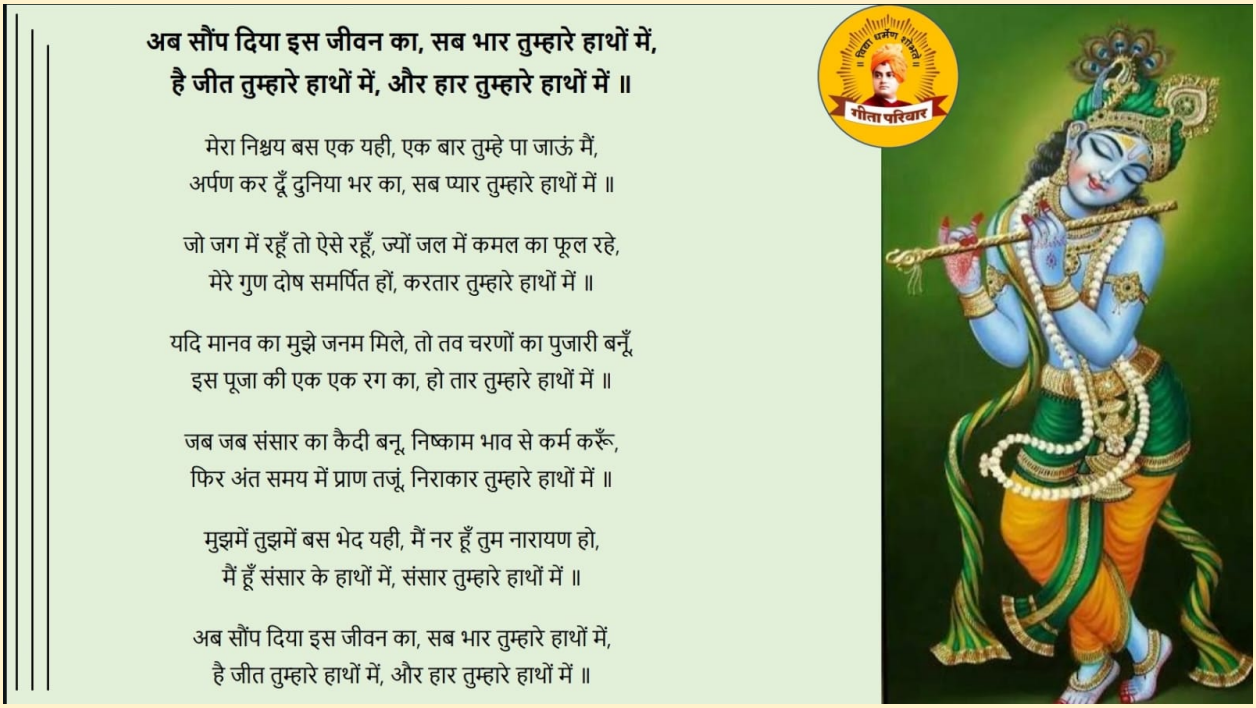

हरि नाम सङ्कीर्तन के साथ आज के विवेचन सत्र का समापन हुआ।

हरि शरणम्, हरि शरणम्, हरि शरणमि,
हरि शरणम्, हरि शरणम्, हरि शरणम्।।

प्रश्नोत्तर सत्र

प्रश्नकर्ता- निशा दीदी

प्रश्न- श्रीभगवान् एवम् हनुमान जी का तीसरा सम्बन्ध कौन सा है?

उत्तर- हनुमान जी ने श्रीभगवान् जी से तीसरे सम्बन्ध के विषय में बताया कि जो आप हैं, वही मैं हूँ।

प्रश्नकर्ता- भरत भैया

प्रश्न- गीता जी का पठन एक स्थान पर बैठ कर करना चाहिये, क्या उसे चलते-चलते कहीं भी पढ़ सकते हैं?

उत्तर- गीता का पठन हम चलते फिरते, जन्म-मृत्यु के सूतक में, महिलाओं के मासिक धर्म के समय, कभी भी किसी समय कर सकते हैं। उससे भी फल प्राप्त होगा, किन्तु निश्चित समय व स्थान पर शुद्ध मन एवम् शरीर से पाठ करने से उसका फल और भी अधिक मिलता है इसलिये कुछ पाठ बैठ कर करना, शेष चलत-फिरते भी कर सकते हैं, उसमें कोई दोष नहीं है।

प्रश्नकर्ता- रेनू दीदी

प्रश्न- हम अनुसूय सहित अन्य गुणों से युक्त कैसे बनें?

उत्तर- जब आपके मन में गुणों को धारण करने की बात आ गई तो उसका मन में ध्यान रखें, अभ्यास करते रहने से धीरे-धीरे गुण आ जायेंगे।

प्रश्न- पहले मैंने हनुमान जी की ही आराधना की, किन्तु बाद में मैंने रामचन्द्र जी की भी भक्ति की। फिर शिव जी की भी पूजा प्रारम्भ कर दी, क्या यह उचित है?

उत्तर- हाँ यह एकदम ठीक है। हमारे यहाँ हर गृहस्थ को पाँच देवों की उपासना नित्य करनी चाहिये। शिव जी, विष्णु जी या उनके अवतार रामचन्द्र जी या कृष्ण जी एवम् गणेश जी, देवी की आराधना तथा सूर्य भगवान को अर्घ्य देना चाहिये। इसे पञ्चायतन पूजा कहा गया है। आदि शङ्कराचार्य जी ने पाँच देवताओं की पूजा को अनिवार्य बताया है। इसमें अपने इष्ट को नहीं बदलना चाहिये।

प्रश्न- महिलायें बहुत जल्दी अपमानित अनुभव करती हैं ऐसा क्यों है?

उत्तर- स्त्री का अहङ्कार पुरुष से अधिक होता है। गीताजी पढ़ने के बाद विवेक जागृत होने के बाद यह समझ में आता है कि हमारे चाहने से कुछ बदलता नहीं है। मैं इस ब्रह्माण्ड में एक कण के समान हूँ। सत्सङ्ग से विवेक की जागृति होती है। सुकरात ने कहा- मैं जितना पढ़ता गया उतना मुझे ज्ञात हुआ कि मैं कुछ नहीं जानता हूँ। सेवा से अहङ्कार का नाश होता है।

प्रश्नकर्ता- सस्मिता जी

प्रश्न- मैं उगते एवम् डूबते हुए दोनों समय सूर्य को प्रणाम करती हूँ, मेरे पति कहते हैं कि डूबते सूर्य को प्रणाम नहीं करना चाहिये। मैं क्या करूँ?

उत्तर- हमारे यहाँ शास्त्रों में तीनों समय सूर्य को अर्घ्य देने का विधान है, इसलिये तीनों समय प्रणाम कर सकते हैं।

"ॐ श्रीकृष्णर्पणमस्तु"

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||